“मध्यकालीन संत साहित्य एवं मानव मूल्य”

- डॉ. गीता यादव,

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,

एस एम आर के महिला महाविद्यालय,

नाशिक-४२२००५

संवत् १३७५ से १७०० तक की कालावधि हिंदी साहित्य में मध्यकाल नाम से जानी जाती है| इसी कालावधि में संत साहित्य का बोलबाला था| हिन्दी साहित्य की अनेक कालजयी रचनाओं का उद्गम इसी समय हुआ| इसलिए इस काल को ‘स्वर्णयुग’ भी कहा जाता है| हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग आज भी अपनी प्रतिभाओं, गुणों और रचनाओं के कारण कालजयी है|

मध्ययुगीन संत काव्य तत्कालीन सामंतवादी और रूढ़ीवादी परिवेश में मानवतावादी चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति है, जो गहरे मानवीय सरोकारों से उपजी है और सार्वभौमिक मानव मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है| मानव मूल्य से तात्पर्य उन मूल्यों से है जिनकी प्रासंगिकता प्रत्येक भौगोलिक परिवेश और अतीत, वर्तमान एवं भविष्य के कालखंड में भी है| लेकिन यहाँ प्रासंगिकता का मतलब मात्र इतना ही नहीं है कि वह मूल्य वर्तमान या परिवेश विशेष की परिस्थितियों को चुनौती भी देता है और उन्हें नवीन संदर्भों में परिष्कृत भी करता है|

मध्ययुगीन संत काव्य में सार्वभौमिक मानव मूल्यों की अभिव्यक्ति निम्न रूपों में हुई है|

- मानव प्रेम के रूप में,
- लोकधर्म के रूप में,
- मानव कल्याण के रूप में,
- सामाजिक विषमता और धार्मिक आडम्बरों के खंडन के रूप में,
- अखंड प्राकृतिक सत्ता के प्रति गहरे लगाव के रूप में|

कालजयी रचना वही होती है जो मनुष्य को उसके अस्तित्व और अस्मिता के समक्ष संकट और मानवता के अपमान करने वाले तत्वों के समक्ष प्रश्नचिन्ह खड़ा करे| मध्ययुगीन कवि चाहे वे असम के शंकरदेव हों या गुजराती के नरसी मेहता हों या कर्णाटक के अलम्मा प्रभु, या हिन्दी के कबीर, जायसी, नानक, तुलसी, दादू, मलूकदास और सूरदास हों सभी अपने-अपने निजी विश्वासों को अपने काव्य में व्यक्त करते हैं|

कबीरदास जब कहते हैं- कबीर सोई पीर है जो जाने पर पीर'- के संत है जो दूसरे की पीड़ा जानता है, जब गुजराती के नरसी मेहता कहते हैं कि वैष्णव जान तो तिने कहिए पीर पराई जाने रे' - वही वैष्णव है जो दूसरे के दुःख को जानता है| तुलसीदास जब कहते हैं कि परहिस सरिस-धर्म नहीं भाई, पर पीरा सम नहीं- अधमाई'- दूसरे को दुःख देने के समान कोई पाप नहीं है और दूसरे को सुख पहुँचाने के समान कोई पुण्य नहीं है तो मध्यकालीन संत एक ऐसे मानव धर्म की नयी व्याख्या कर रहे हैं जो जनमानस के कल्याण के लिए परम आवश्यक है|

संत कबीरदास जी कहते हैं-

"मेरा तेरा मनुआ कैसे एक होय रे,
मैं कहता आँखन की देखि, तू कहता काजल की लेखी|
मैं रहता समझावनहारी तू रहता अरुझाई रे
मेरा तेरा मनुआ कैसे एक हो रे|"

मध्यकाल के संत कवि नये मानव धर्म की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि घाट-घाट में साईं बसता है अर्थात समस्त चराचर में ईश्वर का वास है| उनका परम विश्वास है कि घाट घाट में तेरा साईं बसता है इसलिए संत कवि दुखी जन की पीड़ा को जानने और मानव धर्म को जोड़ने वाले एकता का सूत्र स्थापित कर रहे थे| यह मानव धर्म हिंदू और इस्लाम से परे है|

कबीर, नानक, शंकरदेव, तुलसी, सूर, नरसी मेहता आदि सभी संत कवियों की वाणी जीवन के प्रति आस्था से निकली हुई है, मानवीय सरोकारों से गहरी जुडी हुई है इसलिए वह हृदय की, अतल गहराइयों से जुडी हुई है| वह अनभै सांचा है' अर्थात अनुभव सत्य और अनभै सत्य से युक्त है| संत काव्य हमारी लोकभावनाओं को अपने काव्य में अभिव्यक्त करते हैं|

भक्तिकाल में कबीरदास ही नहीं बल्कि सभी कवियों ने प्रेममार्ग में अहम् को व्यवधान मन है| कबीर कहते हैं-

"प्रेम गली अति सांकरी यामें द्वै न समाय |

आप, हैं तो हरि नहिं, हरि तो आपहूं नाहिं |

इसी प्रकार-

"कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं,

सीस उतारे भुई धरै, सौ पैठे घर माहिं |

भक्ति के संबंध में कविवर्य सूरदास लिखते है-

"सौ बताने की एकै बात

सूर सुमररि हरि-हरि दिन रात|" (सूरदास)

और, "म्हारा री गिरधर गोपाल दूसरा णाँ कुयाँ|" (मीराबाई)

भक्तिकाल का परिदृश्य बड़ा ही विराट रहा इनमें लगभग सभी कवियों ने समता, स्वतंत्रता और बंधुता को एक स्वर में गाया है| तुलसी ने सगुन-निर्गुण में कोई भेद नहीं माना और वे अपने समाज में कटु यथार्थ के दर्शन कराते हैं| तुलसीदास बहुत बड़े समन्वयवादी और मर्यादावादी है| इनके बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि विश्व का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके और तुलसी जैसा कोई समन्वयवादी पूरे भक्तिकाल में दूसरा कोई नहीं है| तुलसीदास मर्यादा कवि के संरक्षक के रूप में दिखाई देते हैं|

"ग्यानहिं भक्तिहिं नहीं कुछ भेदा|

उभय हरहिं भाव संभव खेदा ||"

और

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली

बनिक को बनिज न, चाकर की चाकरी|"

संत कबीर ने भी समाज में व्याप्त विसंगतियों को दूर करने के लिए अथक प्रयास किया वे कहते हैं-

"जाती-पाति पूछे नहिं कोई|'

हरि को भजे सो हरि को होई|"

इसी प्रकार सूरदास के काव्य में भी ईश्वर की लौकिकता प्रदान कर सखा भाव प्रस्तुत किया है| जिससे ईश्वर और भक्त में समानता का भाव प्रस्तुत हुआ है-

"खेलन में को काकौ गुसैया

हरि हारे जीते श्रीदामा , बरबस की कट करत रिसैया|

जाति-पांति हमेते बड नाहिं, बसत तुम्हारी छैयाँ|"

अस्तु, कहा जा सकता है कि भारतीय जनमानस में स्वर्णयुग पहले भी प्रासंगिक था, आज भी है और कल भी रहेगा| मध्यकालीन साहित्य ने जनमानस में मानव-मूल्य टिकाये रहने की महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है| इसलिए हम कह सकते हैं कि ----

कुछ भी बनो

मुबारक है.... पर

पहले इंसान बनो|

संदर्भ: १) प्राचीन तथा मध्यकालीन काव्य ::संपादक::पूरचंद टंडन

२)कबीर बाज भी,कपोत भी पपीहा भी,:: लेखक धर्मवीर .